वीर संवत २४९२, ज्येष्ठ कृष्ण ३, सोमवार, दिनाङ्क ०६-०६-१९६६
गाथा १ से ३ प्रवचन नं. १

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द मूर्ति सिद्धस्वरूपी आत्मा है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' इस आत्मा का स्वरूप जैसे सिद्ध भगवान, अशरीर सिद्ध परमात्मा आठ कर्मरहित हुए, उनका यहाँ पहले माङ्गलिक करेंगे। ऐसा ही आत्मा, सिद्ध समान आत्मा है, उसके अन्तरस्वरूप में उसका योग अर्थात् आत्मा में दर्शन-ज्ञान-चारित्र के अन्तर व्यापार द्वारा सार अर्थात् प्रगट सिद्ध परमात्मदशा प्रगट करना, उसे यहाँ योगसार कहा जाता है। समझ में आता है ?

'योगेन्द्रदेव' महामुनि दिगम्बर सन्त लगभग चौदह सौ वर्ष पहले भरतक्षेत्र में, महाप्रभु कुन्दकुन्दाचार्य के बाद भरतक्षेत्र में हुए हैं। लगभग पूज्यपादस्वामी के बाद ये हुए हैं। इन्होंने यह परमात्मप्रकाश एक बनाया है और एक यह योगसार (बनाया है)। अपने परमात्मप्रकाश के व्याख्यान पूर्ण हो गये हैं। अब योगसार (चलेगा)।

देखो, पहला नमस्कार माङ्गलिक करते हैं। पहले माङ्गलिक करते हैं। 'योगेन्द्रदेव' स्वयं 'योगसार' के प्रारम्भ में माङ्गलिक (करते हैं)। स्वयं महासन्त हैं, आचार्य हैं, अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करके मुक्ति जाने के पात्र और योग्य हैं। ऐसे ग्रन्थकर्ता 'योगेन्द्रदेव' शुरुआत में महान माङ्गलिकरूप में सिद्ध परमात्मा को याद करते हैं, सिद्ध भगवान का स्मरण करते हैं।

सिद्धों को नमस्कार

णिम्मल-झाण-परिट्ठिया, कम्म-कलंक डहेवि।
अप्पा लद्धउ जेण परु, ते परमप्प णवेवि॥१॥

जिन्होंने... तीसरे पद में **'जेण'** शब्द है न? **'जेण'** अर्थात् **जिन्होंने... 'णिम्मलझाण परिट्ठया'-शुद्ध ध्यान में स्थिर होकर...** देखो! यहाँ से बात ली है। कर्म नष्ट हुए और यह ध्यान हुआ – ऐसा नहीं है। कुछ समझ में आया? **'णिम्मलझाण परिट्ठया'** ये सिद्ध भगवान कैसे हुए? परम आत्मा अशरीरी-णमो सिद्धाणं...। यह पाँच

पद में दूसरा पद है, वे सिद्ध परमात्मा किस प्रकार, किस विधि, किस उपाय से सिद्ध पद को प्राप्त हुए – यह बात पहले प्रसिद्ध करते हैं।

‘**णिम्मलझाण परिट्ठुया**’ निर्मल अर्थात् शुद्ध ध्यान। भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द, ज्ञानानन्दस्वरूप, उसमें शुद्ध, निर्मल, एकाकार, स्वरूप के ध्येय से अन्तर में एकाकार होकर निर्मल ध्यान में (स्थिर होकर सिद्ध हुए हैं)। यहाँ तो ध्यान से बात ली है। भगवान आत्मा (में) मोक्षमार्ग की शुरुआत ही ध्यान से होती है। कुछ समझ में आया? पर तरफ के जितने विकल्प, शुभाशुभभाव (होते हैं), वह तो बन्ध का कारण है। यह आत्मा, परमात्मा सर्वज्ञदेव ने शुद्धस्वरूप देखा है। कुछ समझ में आया? भगवान ने (ऐसा आत्मा देखा है)।

‘प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल’ – सर्वज्ञ परमेश्वर से कहते हैं कि हे नाथ! ‘प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल, निज शुद्ध सत्ता से सबको आप देखते हो लाल।’ हे सर्वज्ञदेव! आप तो सर्व जीवों को शुद्ध सत्ता आनन्दमय है – ऐसा देखते हो। कुछ समझ में आया? ‘प्रभु तुम जाणग रीति, सहु जग देखता हो लाल, निजसत्ता से शुद्ध...’ निजसत्ता – अपना अस्ति, जो निज है। निज सत्ता से शुद्ध परमानन्द मूर्ति अनाकुल शान्तरस है। ‘निजसत्ता से शुद्ध सबको देखते...’ हे परमात्मा! समस्त आत्माओं को उनकी निज सत्ता में – निज अस्ति में स्वयं की अस्ति में, स्वयं की हयाती में, अपने अस्तित्व में, अपने अन्तर आत्मा की मौजूदगी में, भगवान आप तो सब आत्माओं को शुद्ध देखते हो। समझ में आता है कुछ?

यह ‘निजसत्ता से शुद्ध सबको देखते’ – समस्त आत्माएँ, परमात्मा निजसत्ता से शुद्ध है। ऐसी निजसत्ता, सत्ता अर्थात् अपना होनापना, अस्तित्व; होनापना। अनादि का भगवान आत्मा, उसका होनापना पवित्र और शुद्धस्वरूप से ही उसका अस्तित्व है। उसमें (होनेवाला) कितना ही पुण्य-पाप का विकार, वह कहीं उसका निज अस्तित्व नहीं है, वह निज सत्ता नहीं है – ऐसा भगवान देखते हैं; इस प्रकार जो कोई आत्मा अपने शुद्धस्वरूप का ध्यान (करे...) देखो! उसमें एकाकार होकर निजसत्ता की शुद्धता को लक्ष्य में ध्येय में, स्थिरता में लेकर ज्ञान-श्रद्धा और चारित्र (द्वारा) इस निज शुद्ध सत्ता को

आश्रय बनाकर, (जो) अन्दर निर्मल ध्यान द्वारा स्थिर हुए, इसके द्वारा हे प्रभु! आप सिद्धपद को प्राप्त हुए हैं। कुछ समझ में आया?

'णिम्मलझाण परिट्ठया' पहले यहाँ से माङ्गलिक शुरु किया है। कर्म मिटे और कर्म गले और कर्म मन्द पड़े, इसलिए आप ध्यान में आये – ऐसा नहीं लिया है। अभी कितने ही कहते हैं न? ज्ञानावरणीय (कर्म का) क्षय होवे तो ज्ञान होगा – ऐसा कहो। ज्ञान की उत्पत्ति होगी तो ज्ञानावरणीय का क्षय हो जाता है – ऐसा मत कहो – ऐसा (कहते हैं)। कुछ समझ में आया? यहाँ पहले शब्द से यह शुरू किया है, देखो! इसमें कर्म को याद भी नहीं किया। **'णिम्मलझाण परिट्ठया परिट्ठया'** शब्द है। निर्मल शुद्ध अन्तर एकाग्र परिस्थित.... परिस्थित – पर (अर्थात्) समस्त प्रकार से स्थिर हुए, स्वरूप में एकाग्र (हुए)। यों तो शुक्लध्यान लेना है। कुछ समझ में आया? एकदम सिद्धपद है न? परन्तु प्रथम **'परिट्ठया'** कहा है न? सम्यग्दर्शन प्राप्त हो, उसमें निर्मल शुद्धस्वरूप की भगवान की दृष्टि में निर्मलरूप परिणमे, तब उसका ध्यान एकाग्र होता है, स्वभाव में एकाग्र होता है परन्तु वह ध्यान समस्त प्रकार से स्वरूप में स्थिरता नहीं करता। कुछ समझ में आया?

धर्मदशा प्रगट होने के काल में, धर्मदशा के प्रगट काल में इस शुद्ध चैतन्यमूर्ति की एकाग्रता का अंश प्रगट होता है, तब उसे धर्म की शुरुआत कहते हैं। यह भगवान तो शुरुआत करने के पश्चात् पूर्णता की प्राप्ति के काल के समय, उन्होंने क्या किया? – यह बात करते हैं। आहा...हा...! कहते हैं कि जिन्होंने शुक्लध्यान में स्थित होते हुए..., **शुद्ध ध्यान स्थित होते हुए....** ऐसा लिखा है। भगवान आत्मा! निर्मल शब्द है न? इसलिए उसमें सब आ जाता है, शुक्ल निर्मल भी आ जाता है।

यह आत्मा प्रभु, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। आत्मा में – निजसत्ता में, सत्ता के अस्तित्व में, अपने होनेपने में तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। निजसत्ता-अपना होनापना जो कायमी असली है, उसमें तो अकेला अतीन्द्रिय आनन्द ही पड़ा है। भान नहीं है, बाहर में गोते खाता है, धूल में और कहीं पैसे में और स्त्री में, पुत्र में, होली में बाहर में कहीं सुख है – ऐसा मूढ़ अनादि से मानता है। समझ में आया? मिथ्याभ्रमणा करके

(मानो) बाहर में कहीं सुख, राजपाठ, बादशाहत, इन्द्र के इन्द्रासन या लक्ष्मी का बड़ा ढेर – पुञ्ज धूल का पड़ा हो (उसमें सुख) मानता है; है नहीं; सुख तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थङ्करदेव ऐसा फरमाते हैं कि भाई! तेरे अस्तित्व में सुख है; दूसरे के अस्तित्व में तेरा सुख नहीं है। समझ में आया इसमें कुछ ? दूसरे के अस्तित्व में, परमात्मा –दूसरे सिद्ध भगवान हों, परन्तु उनके अस्तित्व में तेरा अस्तित्व का आनन्द वहाँ नहीं है, आहा...हा... ! अभी सर्वज्ञ ऐसा बोले सही 'केवलीपण्णत्तो धम्मो सरणं' – भगवान जाने एक भी अर्थ समझे तो! बाबूभाई! है ? तुम ऐसे के ऐसे सब युवा लोगों ने ऐसे के ऐसे बिताया। ऐसा कि दूसरे होंगे इसलिए भूले परन्तु हम भूले हैं, इसलिए ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ?

'केवली पण्णत्तो धम्मो सरणं' वे सर्वज्ञ परमेश्वर निज अस्ति में–त्रिकालवस्तु में अकेला अतीन्द्रिय आनन्द ही भगवान ने देखा है। इस आत्मा में, हाँ! उस अतीन्द्रिय आनन्द की नजर करके उसमें जो '**परिट्ठिया**' (अर्थात्) विशेषरूप से ध्यान में स्थिर हुए। बाहर से अत्यन्त उपेक्षा करके अन्दर में स्थिर हुए। शुद्धध्यान में से पहला माङ्गलिक वाक्य ही यह प्रयोग किया है '**णिममलझाण परिट्ठिया जेण**'। समझ में आता है ? जिन्होंने – भगवान सिद्ध हुए उन्होंने, ...जो भगवान सिद्ध हुए उन्होंने, भगवान आत्मा के शुद्धस्वरूप में लीनता का ध्यान किया, यह उसकी क्रिया! मोक्ष प्राप्त करने की, मोक्ष के मार्ग की यह क्रिया है। बीच में कोई दया, दान, व्रत का विकल्प आता है, वह कोई मोक्ष के मार्ग की क्रिया नहीं है। आहा...हा... !

पहले से आचार्य ने (यह बात शुरु की है)। 'योगसार'... योग अर्थात् आत्मा के उपयोग में जुड़ान करना, वह मोक्ष का मार्ग है। उपयोग में जुड़ान करना, वही मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया ? पर में कहीं जुड़ान हो, रागादि व्यवहार हो परन्तु वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं है। बन्ध के मार्ग के सब विकल्प हैं। भगवान आत्मा अपने आनन्द के अन्दर पहले प्रतीत में अनुभव में लिया हो, फिर उस आनन्द को पूर्ण पर्याय में प्राप्त करने के लिये जिन्होंने स्वरूप में लगनी लगाई है, ध्यान की लगन अन्दर में लगी, अन्दर में छटपटाहट लगी – ऐसे ध्यान में **स्थित होते हुए... 'कम्मकलंक डहेवि'** यह अब ऐसा लिया।

कर्मों के मल को जला डाला है। कर्म के कलंक को जला दिया है। कर्म जले, इसलिए ऐसा ध्यान हुआ है – ऐसा नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

'कर्म विचारे कौन?' वे तो जड़ पदार्थ हैं, निमित्त हैं, तू विकार करे तो कर्म का आवरणरूप से निमित्त होता है और स्वरूप का ध्यान करे तो वे मिट जाते हैं। वे कर्म कहीं कन्धा पकड़कर (नहीं कहते कि) नहीं, तू ऐसा कर। ऐसा है नहीं, आहा...हा...! कहते हैं, कर्म कलंक... आहा...हा...! कर्म का कलंक है, मैल है। आठ कर्म.... यहाँ सिद्ध है न? इसलिए आठों ही कर्म कहे हैं। सिद्ध है तो सही न? आठों ही कर्मरूपी कलंक के मैल को... आठ कर्म हैं न? आठ – ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, अन्तराय, नाम, गोत्र, और आयुष्य। ऐसा मल, उसे जला दिया...। **'डहेवि'** भाषा ऐसी है। उन्होंने नाश किया, वह तो जला दिया – ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! नाश किया ऐसा हलका शब्द नहीं डाला, जला दिया, राख कर दिया। अर्थात्? कर्मरूप जो पर्याय थी, उसकी पर्याय दूसरे जड़, दूसरे पुद्गलरूप हुई। अकर्मरूप पर्याय हो गयी। जला डालने का अर्थ कहीं दूसरी चीज नहीं, परमाणु जल नहीं जाते।

यह आत्मा अपने स्वरूप के अन्तरदृष्टि और ध्यान में स्थिर हुआ, सिद्ध भगवान का आत्मा.... तब उन्होंने कर्म के कलंक की, आठ कर्म की जो पर्याय थी, उसका व्यय हो गया, तब उन्होंने जलाया – ऐसा व्यवहार से कहने में आता है। आहा...हा...! कर्म तो उस समय टलने की योग्यता से ही टले हैं; आत्मा कहीं उन्हें टाले और कर्म को जलाये – ऐसा कभी (नहीं है)। वे तो जड़ हैं। जड़ का कर्ता-हर्ता आत्मा नहीं है परन्तु यहाँ तो यह कहा है कि जिस विकार के संग में, संग था, तब कर्म का निमित्तपने आवरण था, वह संग छूटा, इसलिए आवरण की अवस्था में दूसरी दशा हो गयी। उसे यहाँ कर्म कलंक को जलाया – ऐसा कहा जाता है। **'डहेवि'** मूल में से जला दिया – ऐसा कहते हैं। फिर से कर्म पर्यायरूप हो – (ऐसा) अब है नहीं। फिर? दो पद हुए।

'परु अप्पा लद्धउ', 'परु अप्पा लद्धउ' – क्या प्राप्त हुआ? भगवान आत्मा शक्तिरूप से परमात्मा था, शक्ति के सत्व के स्वभाव के सामर्थ्यरूप से परमात्मा ही था। उसका ध्यान करके **परु** अर्थात् वर्तमान पर्याय में उत्कृष्टरूप से **परमात्म पद को पा**

लिया। पर्याय में – अवस्था में... जो स्वरूप अन्तर में (पूर्ण था, उसे) पर्याय में प्रगट पूर्ण प्राप्त किया अर्थात् पर्याय में पहले शुद्धपद प्रगट था – ऐसा नहीं है। समझ में आया ? वस्तु तो शुद्ध थी, वस्तु तो निज आनन्द और शुद्ध सत्ता, सत्त्व सम्पूर्ण सामर्थ्य वही है परन्तु उसकी दशा का ध्यान करने पर, दशा में ध्यान करने पर उसकी दशा में, वर्तमान अवस्था में – हालत में **'परु लद्धउ अप्पा'** परमात्मरूपी दशा को उस आत्मा ने प्राप्त किया। आहा...हा... ! समझ में आया ?

'परु अप्पा लद्धउ' 'परु' अर्थात् उत्कृष्ट अर्थात् ? बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के तीन प्रकार हैं। उसमें यह **'परु'** अर्थात् उत्कृष्ट जो परमात्म पद है, उसे प्राप्त किया। बहिरात्मा में तो पुण्य और पाप, शरीर वाणी को अपना माने, वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है। जो उसकी वस्तु में नहीं है, उसकी चीज में नहीं है, और बाह्य में पुण्य और पाप के भाव तथा उसके बन्धन व फल, उसे अपना माने उसे बहिरात्मा–बहिर्दृष्टि – बाह्य आत्मा को माननेवाला – ऐसे मूढ़ को बहिरात्मा कहते हैं।

अन्तर में आनन्द और शुद्ध हूँ – ऐसे पूर्णानन्द की जिसे प्रतीति हुई परन्तु पर्याय में अभी पूर्ण पर्याय प्रगट नहीं हुई, यह ऐसे जीव को पूर्ण स्वरूप शक्ति से पूर्ण हूँ – ऐसी प्रतीत अनुभव हुआ परन्तु पर्याय में – अवस्था में पूर्ण पर्याय प्रगट नहीं हुई, उसे अन्तरात्मा कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त यहाँ तो कहते हैं, **'परु अप्पा लद्धउ'** अब अन्तरात्मा भी नहीं। अन्तर के स्वरूप की एकाग्रता द्वारा जो उत्कृष्ट परमात्म पद को प्राप्त हुआ, उसका अर्थ – वह परमात्म पद की पर्याय नयी प्रगट हुई है। वह पर्याय अनादि की थी, अनादि की सिद्ध समान उसकी दशा थी, पर्याय में सिद्ध दशा थी, ऐसा नहीं है; वस्तु में सिद्ध शक्ति थी। समझ में आया ? उसे प्राप्त किया।

'ते परमप्प णवेवि' ऐसे परमात्मा को, उसके उपाय द्वारा जिन्होंने निजपद की पूर्णदशा प्राप्त की – ऐसे परमात्मा को पहचान कर, ख्याल में लेकर, अपने लक्ष्य में लेकर ऐसे **सिद्ध परमात्माओं को नमस्कार करता हूँ।** लो, यह पहला माङ्गलिक किया। 'समयसार' में भी यह लिया है, वहाँ भी सिद्ध को ही पहले लिया है। यहाँ सिद्ध को पहले

लिया। श्रोताओं को कहते हैं, इन सिद्ध को नमस्कार करते ही कहते हैं कि भाई! सिद्ध समान की पर्याय प्रगट हुई, उन्हें नमस्कार कौन कर सकता है? समझ में आया? वह जिसके हृदय में, ज्ञान की दशा में सिद्धपद को स्थापित कर सके और विकारादि मुझ में नहीं है, मैं पूर्णानन्द सिद्ध समान शक्ति हूँ – ऐसे श्रद्धा-ज्ञान में सिद्ध को स्थापित करे, वह सिद्ध को वास्तविक नमस्कार कर सकता है। समझ में आया?

नमस्कार अर्थात्? नमना है, उनकी दशा कैसी होती है? – उसकी प्रतीति न हो तो नमेगा किसे? समझ में आया? इसलिए वहाँ तो ऐसा कहा है न? यहाँ भी वही शैली है। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं **वदित्तु सव्वसिद्धे** मैं सर्व सिद्धों को नमस्कार करता हूँ। अर्थात्? अभी तक जितने सिद्ध भगवान हुए, उन सबको मेरी ज्ञानदशा में, मेरी वर्तमान ज्ञानकला में स्थापित करता हूँ, वन्दन करता हूँ अर्थात् आदर करता हूँ। अभी तक अनन्त सिद्ध हुए, अनादि से होते आ रहे हैं, छह महीने आठ समय में छह सौ आठ मुक्त पद को प्राप्त करते हैं – ऐसा केवलज्ञानी भगवान ने देखा है। छह महीना और आठ समय में छह सौ आठ (जीव) मुक्ति प्राप्त करते हैं – ऐसे आत्माएँ अनन्त काल से सिद्ध समूह इकट्ठे हुए हैं। सिद्ध समूह यह आता है न? सिद्ध समूहम् – ऐसा कहीं आता है, पूजा में आता है। समझ में आया?

उन बड़े सिद्धों का बड़ा नगर वहाँ भरा हुआ है, वहाँ सिद्धों की बस्ती है। आहा...हा...! ऊपर जहाँ सिद्ध परमात्मा विराजमान हैं, वहाँ सब सिद्ध की बस्ती विराजती है, अनन्त सिद्ध, अनन्त सिद्ध विराजते हैं परन्तु सबकी सत्ता भिन्न है। ऐसे अनन्त सिद्ध उनकी नगरी में विराजमान हैं। कहते हैं, ऐसे (सिद्ध भगवान को) यहाँ मैं, मेरे वर्तमान ज्ञान में, ऊर्ध्व में रहे होने पर भी, उन्हें यहाँ नीचे उतारता हूँ। प्रभु! पधारो, पधारो मेरे आँगन में। आहा...हा...!

कहते हैं अरे...! सिद्ध को आदर देनेवाले का आँगन कितना उज्ज्वल होगा! शशीभाई! एक राजा आये तो भी आँगन साफ करते हैं। हैं? वस्त्र बिछायें, ऐसा करें, धूल करे, यह रेत-बेत समान करे, बारीक करे, बारीक शोध डाले, कंकड़ न रहे (इसलिए) अनन्त सिद्ध परमात्मा अशरीरी एक रूप 'णमो सिद्धाणं' ऐसे अनन्त निर्मल पर्याय को,

उत्कृष्ट पद को प्राप्त (हुए) ऐसे अनन्त सिद्धों को मैं वन्दन करता हूँ अर्थात् आदर करता हूँ। अर्थात् ? आदर करता हूँ अर्थात् कि उनके अतिरिक्त राग और अल्पज्ञ और निमित्त का आदर मैं दृष्टि में से छोड़ देता हूँ। समझ में आया ?

हमारा आँगन उज्ज्वल किया है प्रभु! आहा...हा...! अनन्त सिद्धों को स्वयं यहाँ बुलाते हैं। प्रभु पधारों न यहाँ! वे तो उतरते नहीं। अपनी ज्ञान कला की प्रगट दशा में अनन्त सिद्धों को यहाँ अन्दर समाहित करते हैं, विकास करते हैं कि ओ प्रभु! निर्विकल्प पर्याय में प्रभु प्राप्त होओ, प्रभु आओ। समझ में आया ? जिसकी ऐसी दृष्टि हुई है, वह अनन्त सिद्धों को अपनी पर्याय के आँगन में पधराता है। यह उसने भगवान को नमस्कार किया, कहा जाता है। ऐसे सब 'णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं' पहाड़ा बोले जाये, उसमें कुछ हो - ऐसा नहीं है। समझ में आया ? बाबूभाई ? कितना बोल गये ऐसे के ऐसे ? 'णमो सिद्धाणं, णमो अरिहन्ताणं', 'णमो सिद्धाणं णमो अरिहन्ताणं' परन्तु नमो क्या ? नमते हो वह चीज कैसी है ? मैं नमस्कार करनेवाला उसे आदर किस भाव से देते हो ? तेरे भाव में क्या शुद्धता आयी है ? - उसकी कुछ खबर बिना 'णमो अरिहन्ताणं' ऐसे पहाड़े तो अनन्त बार बोले हैं, उसमें कुछ नहीं हुआ। गडिया कहते हैं न ? गडिया क्या कहलाता है ? पहाड़ा। तुम्हारे कहते हैं न ? एक एकडे एक, बिगड़े दो बोलते हैं न ? क्या कहते हैं तुम्हारे ? पहाड़ा। समझ में आया ?

इस एक गाथा में... आहा...हा...! समझ में आया ? अपनी पर्याय में सिद्ध को याद करते हैं न ? सब भूलकर, हाँ! अकेले सिद्ध ही मानो नजर में तैरते हों, और नमस्कार करने योग्य, नमने योग्य तो मानो, अनन्त सिद्धों का समूह, ऐसी पर्याय को ही मानो नमने योग्य इस जगत में वस्तु हो, कोई राग और निमित्त और अल्प पर्याय में नमने योग्य जगत में नहीं हो - ऐसी जिसकी अन्तर में दृष्टि हुई है, वह उन अनन्त सिद्धों को अपने ज्ञान में पधराता है। आहा...हा...! समझ में आया ? चिमनभाई! यह बातें ऐसी हैं। आहा...हा...! कहीं भी ध्यान में प्रभु! आपने तो निर्मल ध्यान किया था न ? उसका भरोसा ? उसका भान ? और उस निर्मल ध्यान द्वारा उस पूर्णानन्द की शक्ति की व्यक्तता... शक्ति में तो था, हाँ! परन्तु प्रगटता हुई - ऐसी दशा को प्राप्त ऐसे परमात्मा को ही मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभु! उनका

ही मैं आदर करता हूँ - ऐसा कहकर पहली गाथा में महा-माङ्गलिक किया है। अपन ने शुरुआत यहाँ की और... प्रकृतिक कहाँ का मैल है! है? ऐई...! हरिभाई! कहाँ का कहाँ आकर पड़ा? अब कभी यह सवा तीस वर्ष में पहले वांचा जाता है।

मुमुक्षु : यह मकान भी पहला हुआ, यहाँ तो बड़ा गड्ढा था।

उत्तर : हाँ, वे ठीक कहते हैं, यह तो खड्ढा था, वहाँ गहराई करिये - ऐसा कहते हैं। ऐसे जिसकी पर्याय में अनादि का गड्ढा है, अज्ञान में, मिथ्याभ्रम में, मैं रागी और द्वेषी का बड़ा गड्ढा है, छोड़ गड्ढा, कहते हैं। अन्दर सिद्ध का बँगला था, समझ में आया?

मैं सच्चिदानन्दप्रभु सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमेश्वर ने ऐसा कहा। परमेश्वर के मुख में ऐसा आया कि तू सिद्ध समान, तुझे मैं देखता हूँ न! केवलज्ञानी परमात्मा ने उनकी वाणी में इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण की सभा में बड़े इन्द्र, लोक के, अर्धलोक के स्वामी... समझ में आया? दक्षिणेन्द्र के स्वामी सौधर्म इन्द्र, उत्तर के स्वामी ईशान इन्द्र, ऐसे इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान फरमाते हैं, भाई! हम तुझे सिद्ध समान देखते हैं न? तू देखना सीख न! कहो, चन्द्रकान्तभाई! यह किस प्रकार की (बात है)? इसमें धर्म क्या होगा?

आत्मा परमानन्द की पर्याय जो प्राप्त हुई, उसका भरोसा किया, उपाय का भरोसा किया, उस शक्ति में था, वह प्रगट हुआ, उस शक्ति का भरोसा किया और उसमें नमन किया अर्थात् अन्दर स्वरूप की ओर का अन्तर विनय और आदर किया है। समझ में आया? उसे माङ्गलिक कहते हैं। देखो न! सिद्धसमान अपने स्वरूप को ध्याकर - ऐसा आता है न? 'समयसार' पहली गाथा में। सिद्ध भगवान, वे प्रतिछन्द के स्थान पर है, ऐसा आता है न? प्रतिछन्द नहीं? हे भगवान! आप सिद्ध हो, ऐसा बोले। बड़ा मकान होता है न? पाँच लाख, दस लाख, करोड़, दो करोड़ का, उसमें आवाज सामने आती है, लो! हे भगवान! तुम सिद्ध हो, ऐसी सामने (आवाज / प्रतिध्वनि) लो। यहाँ बोले, हे प्रभु! तुम पूर्ण हो। ऐसा बोले वहाँ आवाज ऐसी आती है हे प्रभु! तू पूर्ण हो - ऐसा आता है। समझ में आया? होता है न बड़ा मकान? करोड़ों, दो-दो करोड़ और पाँच-पाँच करोड़ के मकान है? प्रतिध्वनि पड़े, नहीं वह मैसूर का मकान, देखने गये थे? बड़ा नहीं? तीन करोड़ का।

वहाँ एक बंगला है, है... बड़ा मकान! पाँच–पाँच करोड़, दस–दस करोड़ के बंगले विदेश में होते हैं, राजाओं के। वे तो धूल के बड़े ढेर वहाँ होते हैं परन्तु अन्दर ऐसी आवाज आती है, हे नाथ! तुम पूर्ण हो, वहाँ सामने आवाज (प्रतिध्वनि) आती है कि हे नाथ! तुम पूर्ण हो। ऐसे सिद्ध भगवान को... है?

इसलिए यह अन्दर में यह एकाकार होता है, यह वास्तविक प्रतिध्वनि पड़ती है – ऐसा कहते हैं।

सिद्ध परमात्मा स्वयं को ध्याने में वे प्रतिछन्द के स्थान पर हैं। जैसे, आवाज करते हैं न? यह परमात्मा की आवाज अन्दर से आती है। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।'

'चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्धसमान सदा पद मेरौ।
मोह महातम आतम अंग, कियौ परसंग महा तम घेरौ॥
ज्ञानकला उपजी अव मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, बेगि मिटै भववास वसेरौ॥'

(समयसार नाटक, उत्थानिका, श्लोक-११)

इस शरीर मिट्टी में धूल में चैतन्य अमृत जैसा सागर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का समुद्र, वह इस कलंक में बसता है, वह उसे कलंक है। समझ में आया? इसी में आता है न? जन्म धारण करना कलंक है। इसी में आयेगा। नहीं? हैं? इसमें आता है! एक श्लोक आता है, जन्म करना, वह जीव को कलंक है। शरम, शरमजनक जन्म आता है न? शरम जनक जन्मौं तले... आहा...हा...! अरे...!

एक मैसूर(पाक) चार सेर घी का पिया हुआ हो, उसे मरे हुए गधे के चमड़े में ऐसे ढाँकना, गधा मर गया हो और उसका सड़ा हुआ चमड़ा हो, चार किलो घी का पिया हुआ मैसूर, पाँच किलो, दस किलो बढ़ा, अब देश में ले जाना है, डालो गधे के खोले में, डालेगा? अरे...र...र...! इसी प्रकार यह तीन लोक का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति, उसे मैसूर की उपमा क्या देना? समझ में आया? ऐसा आनन्दकन्द जिसे दर्शन–ज्ञान –चारित्र की पर्याय से पूर्णानन्द को प्राप्त करे – ऐसा जिसका स्वरूप, उसे इस माँस की हड्डियों में रखकर शोभा करना, वह कलंक है, कलंक है। समझ में आया? अशरीरी होने

के लिये सिद्ध को याद किया है। समझ में आया ? शरीर-फरीर अब नहीं, हम अशरीरी होनेवाले हैं; हम एक-दो भव में अशरीरी होंगे - ऐसी कौल-करार करके सिद्ध को नमस्कार करते हैं, आहा...हा...! एक श्लोक हुआ। यह सिद्ध को नमस्कार किया है, हाँ!

☆ ★ ☆

अरहन्त भगवान को नमस्कार

घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ, णंत-चउक्कु पदिट्ठु।
तह जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खमि कव्वु सु-इट्ठु॥२॥

चार घातिया क्षय करि, लहा अनन्त चतुष्ट।
वन्दन कर जिन चरण को, कहूं काव्य सुइष्ट॥

अन्वयार्थ - (**घाइचउक्कहं विलउ किउ**) जिसने चार घातिया कर्मों का क्षय किया है (**णंतचउक्कुपदिट्ठु**) तथा अनन्तचतुष्टय का लाभ किया है (**तह जिणइंदहं पय**) उस जिनेन्द्र के पदों को (**णविवि**) नमस्कार करके (**सुइट्ठुकव्वु**) सुन्दर प्रिय काव्य को (**अक्खमि**) मैं कहता हूँ।

☆ ★ ☆

अब, **अरहन्त भगवान को नमस्कार**। दूसरा श्लोक, अरहन्त भगवान को नमस्कार।

घाइ-चउक्कहँ किउ विलउ, णंत-चउक्कु पदिट्ठु।
तह जिणइंदहँ पय णविवि, अक्खमि कव्वु सु-इट्ठु॥२॥

जो अरहन्त भगवान... ओ...हो...! **जिसने 'घाइचउक्कहँ विलउ किउ' जिसने चार घातिया कर्मों को...** विलय अर्थात् **क्षय किया है...** सिद्ध भगवान के तो आठ कर्मों का क्षय है। अरहन्त भगवान विराजते हों, अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। अरहन्त भगवान अभी भरत-ऐरावत में नहीं हैं। महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ वर्तमान में अरहन्त पद में श्री 'सीमन्धर प्रभु' विराजते हैं। ऐसे बीस तीर्थङ्कर विराजते हैं

और महाविदेहक्षेत्र में लाखों केवली भी विराजते हैं। अरे... ! उन लाखों केवलियों और अरहन्तों की सत्ता का स्वीकार करके अन्तर में नमन (करना), वह कोई अपूर्व बात है। समझ में आया ?

जो कोई '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।**' जो कोई अरहन्त परमात्मा विराजते हैं, वे कैसे हैं ? **जिन्होंने चार घातिया कर्मों का क्षय किया है...** ऐसा स्पष्टीकरण क्यों किया ? क्योंकि अभी चार कर्म निमित्तरूप से बाकी हैं। अरहन्त को चार कर्म अभी बाकी हैं। जब 'महावीर' परमात्मा यहाँ समवसरण में विराजमान थे, तब भगवान अरहन्त पद में थे, तब चार कर्मों का नाश हुआ - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणी, मोहनीय और अन्तराय। चार कर्म बाकी थे - वेदनीय, आयु (गोत्र, नाम)। उसका भी पता नहीं होता। भगवान जाने (कितने बाकी होंगे) ! घर में गद्दों की संख्या का पता, घर में कितने हैं, वह (पता होता है), धूल का लोचा कितना, उसका इसे सब पता पड़ता है। चिमनभाई ! आहा...हा... ! यह चार कर्म किसने नष्ट किये ? और चार कर्म किसे रहे ? और आठ किसने नष्ट किये ? क्या आठ होंगे ? भगवान जाने ! भगवान तो जानते ही हैं। कहते हैं, ओहो... ! जिसने अरहन्त के द्रव्य, गुण और पर्याय को जाना, परमेश्वर त्रिलोकनाथ अरहन्त पद, जहाँ आगे वाणी उठती है, वाणी निकलती है। सिद्ध को वाणी नहीं होती, सिद्ध परमात्मा तो अशरीरी हो गये हैं, उन्हें वाणी, शरीर नहीं होता। अरहन्त को शरीर और वाणी होते हैं, क्योंकि वहाँ चार अघातिया कर्म शेष रहे हैं। भगवान अभी महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। समवसरण में इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की वाणी इच्छा बिना निकलती है। उन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश किया है। आहा...हा... ! जिसने ऐसे अरहन्त पद के द्रव्य-गुण तो ठीक, परन्तु उनकी पर्याय की इतनी सामर्थ्य है - ऐसा जिसने ज्ञान में जाना, कहते हैं कि वह आत्मा अन्दर में अपने साथ ऐसी पर्यायवाला ऐसा आत्मा और मैं उनकी नात की जाति का आत्मा.... समझ में आया ? सिद्धों का नातेदार हूँ, आता है। आया था न ? उस बोल में आया था, लड़के नहीं बोलते थे ? मैं सिद्ध का नातेदार हूँ। आहा...हा... ! मैं निगोद और ऐसे संसारी का नातेदार नहीं हूँ। नातेदार नहीं कहते ? दशाश्रीमाली। हमारी नात पाँच-पचास करोड़ है। है हमारे नातेदार। है ? नातेदार

हों और उनके लड़कों का विवाह होता हो तो भले गरीब हो, भले भीख माँगता हो तो भी उसकी नात में वह जीमने जाता है। गन्दे व्यक्ति के घर में बँगला हो तो वहाँ जीमने साथ जाता है ? है ?

मुमुक्षु : परन्तु इसे जातिभोज में निमन्त्रण नहीं होता।

उत्तर : इसे उस प्रकार का निमन्त्रण नहीं होता और उसे तो बिना (निमन्त्रण) हमारी जाति है, दशाश्रीमाली का जातिभोज है, इसलिए हम जायेंगे और वह भी फिर चाहे जैसा उसका लड़का हो, खजूर बँटती हो, तब वह दशाश्रीमाली का लड़का हो वह मण्डप में घुस जाता है और वह (गन्दा व्यक्ति) हो, वह दरवाजे के पास खड़ा रहता है, खजूर लेनी हो तो वहाँ खड़ा रहे, अन्दर नहीं घुसे, उसकी हद इतनी होती है। समझ में आया ? यह सब देखा है या नहीं ? यह सब हमने तो देखा है, सबकी बातें (देखी है)। हाँ, वह बनिया गरीब हो तो भी अन्दर चला जाता है। हमारी जाति का लड़का है, दूसरे को तो जाति बाहर हो इसलिए खड़ा रहता है। इसी प्रकार सिद्ध परमात्मा को यहाँ कहते हैं, प्रभु! मैं तो आपका नातेदार हूँ, हाँ! इस थोड़े काल में प्रभु आपके साथ अनुभव करने, वहाँ आनेवाला हूँ। समझ में आया ? यहाँ अरहन्त के स्वरूप को पहले जानता है, तब उसे आत्मा के द्रव्य के साथ मिलाता है कि मैं ऐसा ? यह भगवान ऐसे और मैं ऐसा क्यों ? यह अल्प पर्याय क्यों ? मेरी दशा में अल्प अवस्था क्यों ? यह राग क्यों ? अन्दर में जाता है, दृष्टि करता है, वहाँ पूर्ण स्वरूप है – ऐसी प्रतीति होने पर उसे क्षायिक समकित होता है। क्षायिक हुआ तो केवलज्ञान लेकर ही रहेगा। समझ में आया ?

'घाइचउक्कहं किउ' देखो, चारघातिया कर्म का **'विलउ'** फिर भाषा कैसी है ? विलय। समझ में आया ? विशेष लय। भगवान अरहन्त में (घातिकर्म का) नाश कर डाला है। **'अणंत चउक्कपदिट्ठु'** अनन्त चतुष्टय का लाभ। **'दिसु'** है न अन्दर ? **'प्रदिसु'** प्रदेश में प्राप्त किया। चार घातिया का ध्यान द्वारा भगवान ने नाश किया और चार को प्राप्त किया। चार का नाश और चार की प्राप्ति। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त वीर्य – ऐसी चार दशा को अरहन्त भगवान ने प्राप्त किया, उन्हें अरहन्त कहते हैं। समझ में आया ? भगवान जाने अरहन्त कैसे होंगे ? णमो अरहन्ताणं। मर जाता

है। णमो अरहन्ताणं शब्द में मर जाता है परन्तु अरहन्त किसे कहना ? – इसका पता भी उसे नहीं होता।

मुमुक्षु : भगवान तो सच्चे थे न ?

उत्तर : किसके सच्चे ? धूल में, जाने बिना ? समझ में आया ?

प्रवचनसार में शुरुआत में कहते हैं या नहीं ? कि हे प्रभु ! 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, मैं आपको वन्दन करता हूँ, परन्तु मैं कौन हूँ ? मैं कौन हूँ ? आपको वन्दन करता हूँ तो आप कौन हो ? और मैं वन्दन करनेवाला कौन हूँ ? दोनों का मुझे भान है। प्रभु ! मैं वन्दन करनेवाला तो दर्शन–ज्ञानमय आत्मा हूँ। मैं आपको वन्दन करनेवाला तो दर्शन –ज्ञानमय भगवान आत्मा हूँ। मैं वन्दन करता हूँ। मैं सिद्धों को, अरहन्तों को नमस्कार करता हूँ। मैं अर्थात् कौन हूँ ? समझ में आया ? भगवान तुम भी कौन हो ? कि भगवान को नमस्कार करते हैं। यह हम मनुष्य हैं। नहीं, यह ? नहीं, नहीं; तुम मनुष्य नहीं। यह तू कर्मवाला नहीं, तू रागवाला नहीं, आहा...हा... !

भगवान आत्मा अनन्त–अनन्त बेदह जिसका जानना–देखना आनन्द स्वभाव वह मैं। वह मैं। मैंपना लागू पड़े, वहाँ कभी वह चीज हटनी नहीं चाहिए। समझ में आया ? राग–द्वेष तो मिट जाते हैं, वे कहाँ इसके मैंपने में थे ? वन्दन करनेवाला कहता है, मैं ज्ञान –दर्शनमय हूँ। यहाँ सब पुस्तक आये हैं न ? इस प्रवचनसार में है 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं प्रभु ! मैं वन्दन करनेवाला, मैं अर्थात् मेरी सत्ता, मेरे अस्तित्व में, मैं होनेपने में दर्शन –ज्ञानमय, मेरा होनापना है। ज्ञाता–दृष्टापना वह मेरा होनापना है। वह आपको – इस पूर्ण परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। विकल्प उत्पन्न हुआ है, वह व्यवहार नमस्कार है, स्वरूप में एकाग्रता हुई वह निश्चय नमस्कार है।

यहाँ कहते हैं, चार घातिया कर्मों का नाश होकर क्या प्राप्त किया ? अनन्त चतुष्टय का लाभ लिया। लो, यह लाभ सवाया, बनिये नहीं लिखते ? है ? क्या कहलाता है ? दरवाजे पर लिखते हैं, दरवाजे पर, है ? दरवाजे पर लिखते हैं न, लाभ सवाया, किसका ? धूल सवाया। यह रुपया है, इसका सवाया, ओहो... ऐसा ! ऐ... चन्दूभाई ! है ? समता का फल... क्या कुछ बोलते हैं। समता का फल मीठा है ? दूसरा एक कुछ आता है

न? धीरज बड़ी बात है और लाभ सवाया-लाभ सवाया है। जाओ! अन्त में वहाँ रखना, कहते हैं।

यहाँ तो अरहन्त ने लाभ प्राप्त किया। सर्वज्ञ परमेश्वर अरहन्त ने लाभ प्राप्त किया। प्रभु! आपने क्या लाभ प्राप्त किया? - वह मेरे ज्ञान में है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जो अनन्त काल से आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख जो शक्तिरूप से था, उसे भगवान आपने पर्याय-अवस्थारूप से प्राप्त किया। वह प्राप्त किया - ऐसी आपकी सत्ता का हमें स्वीकार है। ऐसे अरहन्त होते हैं, उसका हमें ज्ञान है, उसका भान है। वह भानवाले हम नमस्कार करते हैं। अन्ध श्रद्धा से, अन्ध होकर नमस्कार करते हैं - ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं। शशीभाई! आहा...हा...! धाधड़क... देखो न! परमेश्वर, जैन परमेश्वर के अलावा यह बात कहीं नहीं है। सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ वीतरागमार्ग, इसके अतिरिक्त यह मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं हो सकता परन्तु उनके मार्ग में पड़े हुए को भी उसका पता नहीं होता। अन्ध श्रद्धा से दौड़ पड़े हैं, जहाँ जन्में (वहाँ) भगवान... भगवान... भगवान... (करते हैं)। कहाँ वे अरहन्त कौन हैं, वे तुम्हारे? कोई हो गया होगा राजा-बाजा, कोई हो गया होगा। है? कोई भगवान हो गये होंगे, भगवान हो गये होंगे। लिखा है न? उसमें लिखा है, हाँ! एक अरहन्त नाम का राजा हो गया। आहा...हा...! कुछ पता नहीं होता।

यहाँ कहते हैं — अरहन्त तो, परमात्मा आत्मा थे, उन्हें अनादि से चार घातिया कर्म का सम्बन्ध था, आठ का सम्बन्ध था परन्तु चार का अभाव किया और चार दशा प्रगट की। अनन्त केवलज्ञान-दर्शन आदि चार के नाम नहीं दिये? परन्तु उसका अर्थ... **'अणंत चउक्कपदिट्ठु'** अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया।

'तहिं जिणइदहं पय' आहा...हा...! **उन जिनेन्द्र के पदों को...** ऐसे जिनेन्द्र के चरण-कमल को। ऐसे **'तहिं जिणइदहं पय' 'तहि'** अर्थात् वे जिनेन्द्र-ऐसे जिनेन्द्र उनके **पदों को...** अर्थात् चरण-कमल को **'णविवि' नमस्कार करके...** मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। ऐसे अरहन्त भगवान को नमस्कार। देखो, इसमें श्रद्धा का भान आया, ज्ञान का आया, स्थिरता पूर्ण की तब चारित्र का आया और शक्तिरूप से थी वह प्रगटरूप

से दशा हुई। अभी चार बाकी है, इसलिए उन्हें अरहन्त कहते हैं। आठों अभाव हो गये हों, उन्हें सिद्ध कहते हैं। उन्हें **नमस्कार करके... जिनेन्द्र के पदों को नमस्कार करके... 'सुइट्ठु कव्व'** क्या कहते हैं? **'सुइट्ठु कव्व'** प्रिय काव्य कहूँगा... समझ में आया? काव्य को प्रियपने की उपमा दी है। यह काव्य कहूँगा न? यह काव्य-श्लोक; **'सुइट्ठु कव्व' सुन्दर प्रिय काव्य को कहता हूँ।** जिसमें आत्मा का अधिक हित-मार्ग प्रवर्तित हो - ऐसे को मैं कहता हूँ। यह अरहन्त को नमस्कार किया। समझ में आया? पहचान कर किया है, हाँ! अब ग्रन्थ रचने की योग्यता बताते हैं।

☆ ★ ☆

ग्रन्थ को कहने का निमित्त व प्रयोजन

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥

इच्छक जो निज मुक्ति का, भव भय से डर चित्त।
उन्हीं भव्य सम्बोध हित, रचा काव्य इक चित्त॥

अन्वयार्थ - (**संसारहँ भयभीयहँ**) संसार का भय रखनेवालों के लिए व (**मोक्खहँ लालसियाहँ**) मोक्ष की लालसा धारण करनेवालों के लिए (**अप्पासंबोहण -कयइ**) आत्मा का स्वरूप समझाने के प्रयोजन से (**एक्कमणाहं**) एकाग्र मन से (**दोहा कय**) दोहों की रचना की है।

☆ ★ ☆

ग्रन्थ को कहने का निमित्त और प्रयोजन। तीसरा श्लोक

संसारहँ भयभीयहँ, मोक्खहँ लालसियाहँ।
अप्पा-संबोहण-कयइ, दोहा एक्कमणाहँ ॥३॥

आचार्य महाराज 'योगीन्द्रदेव' कहते हैं कि यह काव्य किसके लिये बनाता हूँ? कि **संसार से भय रखनेवाले के लिये** चार गति से भय प्राप्त हों उनके लिये है। जिन्हें

चार गति में रहना है और मजा करना है, दु:खी होना है, ऐसा (उनके लिये नहीं)। समझ में आता है? '**संसारहं भयभीयाहं**' 'संसार' शब्द से चारों गति, हाँ! जिसे स्वर्ग के सुख से भी भय हुआ है, क्योंकि स्वर्ग के सुखों की कल्पना, वह दु:ख है। यह चक्रवर्ती का राज्य और बादशाह की एक दिन की अरबों रुपयों की आमदनी हो, वह (सुख की) कल्पना मानी है, वह दु:ख है। आहा...हा...! उस दु:ख से जिसे त्रास हुआ है कि अब यह दु:ख नहीं, अब नहीं, अब नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो धर्म करके सुख मानते हैं?

उत्तर : धर्म करके वह पैदा करना चाहता है, ऐसा कहते हैं। धर्म करेंगे तो पैसे, रोटी से सुखी होंगे, भक्तामर जपेंगे, 'भक्तामर प्रणत मोलि मनी प्रभाना' इसलिए बोलते हैं? नंगे, भूखे न रहें शरीर के ढँकनेवाले... कपड़े मिला करेंगे। सदा भिखारी रहा करेंगे, आहा...हा...! ऐ... चन्द्रकान्तभाई! कितने ही बनिये प्रात:काल उठकर भक्तामर करते हैं न? है? सुर-ताल लगाकर गाते होंगे उसमें? है? रोज बोलें कि जिससे सब समान रहे। धूल में भी नहीं रहता, सुन न! अब बाहर में तो पुण्य होगा ऐसा रहेगा, मर जायेगा तो भी, लाख तेरे भक्तामर जप तो भी पूर्व के पुण्य अनुसार रहनेवाला है, बाकी बदलने का कुछ है नहीं। परन्तु मूढ़ अभी चार गति के दु:ख से थका नहीं है।

कहते हैं चार गति के दु:ख से थका हो - ऐसे जीव के लिये यह मेरी बात है। आहा...हा...! मोक्षार्थी के लिये मेरी यह बात है, है?

मुमुक्षु : दूसरे बोल में...

उत्तर : वह बाद में कहेंगे। यहाँ तो पहले नास्ति से लेते हैं न? संसार का भय रखनेवाले, चार गति से त्रास (हुआ है) अरे...! अवतार, अवतरित होना, वह दु:खरूप है। जन्म-मरण संयोग, वह सब दु:खरूप है। चार गति की प्राप्ति, यह इन्द्रपद की प्राप्ति भी दु:खरूप है, क्योंकि इन्द्रपद की प्राप्ति में लक्ष्य जाता है कि यह ठीक है, वह सब राग दु:खरूप है। आहा...हा...! समझ में आया?

(साधना में) कुछ कमी रही (हो) और पुण्य के कारण धर्मात्मा स्वर्ग में जाता है तब ऐसा देखता है कि अरे...! हमारे राग बाकी रह गया, उसका पुण्य हो गया और उसमें

यह संयोग मिला। अरे... ! हमारा काम कम रहा, हमें स्वरूप में स्थिरता करनी चाहिए, उतनी नहीं हो सकी और यह उसका फल आया। समझ में आया ? ऐसा उल्टा खेद करते हैं, इन्द्रपद देखकर खेद करते हैं। अरे... ! यह फल आया ? अरे... ! हमारा आत्मा सच्चिदानन्दप्रभु पूर्ण केवलज्ञान की प्राप्ति करे - ऐसी ताकतवाला, उसे यह संयोग का फल मिला ! अरे... ! हमने काम बाकी रखा, हमारा काम अधूरा रह गया, स्वरूप में स्थिरता होनी चाहिए उतनी नहीं हुई; इसलिए राग बाकी रह गया, उसका यह फल है। फिर स्मरण करता है कि भगवान के मन्दिर कहाँ हैं ? देव कहते हैं पधारो अन्नदाता ! भगवान की प्रतिमाएँ हैं, मन्दिर है, उनकी पूजा करो - आचार है, व्यवहार है, भगवान की पूजा करो। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि जिसे संसार का भय लगा है, यह निर्णय करना चाहिए, उसे कहता हूँ (- ऐसा) कहते हैं। समझ में आया ? '**संसारहं भयभीयाहं**' संसार से '**भयभीयाहं**' भय रखनेवाले। आहा...हा... ! एक बार ऐसा फाँसी पर चढ़ाने का निश्चित करे न तो कँपकँपी छूट जाये। हुआ था न ? राजकोट में। ढीला पड़ गया, ढीला, हाँ ! वहाँ हम गये थे। जेल में एक को फाँसी चढ़ाने का था, बाईस वर्ष का युवक। एक लड़की को मार डाला था, फाँसी का नक्की हो गया था, जेलर साथ में, एक हमारे साथ सब बड़े (लोग) थे। उन लोगों को दर्शन करने का भाव है (ऐसा कहा) इसलिए हम वहाँ गये थे। सब साथ गये थे। जिसने खून किया, उसे बाहर नहीं निकालते, बाईस वर्ष का युवा इसलिए उसका अमलदार साथ आया, महाराज ! बेचारा पैर लगा ऐसा करके, परन्तु ऐसा ढीला हो गया। निश्चित हो गया था बाईस वर्ष का युवा, फाँसी का निश्चित हो गया था। हाय... हाय... ! ऐसा नीचे ढाला जाली में, उसे बाहर निकालते नहीं। भाई ! तेरा नाम क्या ? क्या किया था ? 'बटुक' बाईस वर्ष का युवा। फाँसी का निश्चित हो गया, फिर बारह महीने में फाँसी दी, बारह महीने में दे दी। फाँसी दी, बारह महीने में फाँसी दी। आहा...हा... ! एक बार फाँसी पर चढ़ने का यह त्रास है। वे लोग कहते थे कि उस कमरे में हम फाँसी पर चढ़ाते हैं, उन्होंने कमरा बताया। अमलदार लोग साथ आये, महाराज आये हैं, सबको पैर लगना हो, दर्शन करने आवे न ! उस जगह ले गये, दो हाथ पीछे बाँधे फिर दो कड़े थे, वहाँ सूत की डोरियाँ तीन दिन मक्खन में डुबोकर रखे, तीन दिन डुबोकर रखे, इसलिए झट

चिपक जाये। यहाँ रेशा नहीं होता फिर वह आधे घण्टे में देह छूट जाये। पाँच मिनट बाद आधा घण्टा रखते हैं, सब बताया था। आहा...हा...! परन्तु वह प्रदर्शन देखो! वह अन्दर घुसे, तब उसके कन्धे काँप गये, नक्की हो गया था परन्तु जहाँ अन्दर गिरा, और पैर बाँधा, पहले हाथ बाँधा, फिर वहाँ खड़ा रखकर पैर बाँधते हैं और यहाँ टोपी डालते हैं, उसके एक मरण के यह दुःख के त्रास... अरे...! चार गति के दुःख का त्रास जिसे लगा हो – ऐसे जीवों के लिये यह मेरा 'योगसार' का उपदेश है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जिसे उसमें मिठास वर्तती हो, भव करना हो, अभी कहीं स्वर्ग में जाना हो और सेठाई करना हो, एक-दो सेठ अवतार, 'अहमदाबाद' में 'माणिकचौक' में लेना हो... ऐई...!

नहीं, नहीं, यह तो वे एक थे न? 'वगसरा' में कालीदासभाई थे, वे पहले गृहस्थ थे, पैढी थी। 'राम श्रीपाल' की पैढ़ी थी, लाखोंपति। फिर बेचारे गरीब हो गये। एक स्वयं भाई रह गया था, फिर साधारण घर किया, फिर सुनने आते, महाराज! तुम मोक्ष की बातें करते हो, परन्तु मोक्ष नहीं चाहिए? तो तुम्हारे क्या चाहिए? इस अहमदाबाद में माणिकचौक में झवेरी होना है। गधा, तेरा नाम इनके हीरे ढोने के लिए। परन्तु वे भी मजाकिया थे। मैंने कहा – क्या करते हो यह? माणिकचौक में निकले तो देखे, देखो, यह झवेरी! देखो यह झवेरी! लोग एक दिन में देखो कितना? परन्तु वे हैं क्या? कहाँ जाना है तुम्हारे? कि हमें तो अभी झवेरी होना है। परन्तु मर जाओगे, वहाँ गधा नहीं होओगे। फिर दाँत निकालते हैं, ऐसे अवतार जिसे धारण करना है, जिसे जन्म-मरण का त्रास नहीं है, उसके लिये हमारा उपदेश लागू नहीं पड़ता। आहा...हा...! समझ में आया? एक बात।

मोक्ष की लालसा धारण करनेवाले को... अब देखो! अस्ति-नास्ति की है। (भव) भय से त्रास और मोक्ष की अभिलाषा। जिसे अकेली मोक्ष की अभिलाषा है। मुझे तो छूटना है। देखो, यह पुण्य बन्धन होकर स्वर्ग में जाना यह नहीं रहा। मुझे तो छूटना, छूटना और छूटना है। आहा...हा...! ऐसा '**मोक्खहं लालसियाहं**' मोक्ष की लालसा अर्थात् अभिलाषा। मोक्ष की अभिलाषा धारण करनेवालों के लिये यह मेरा योगसार है – ऐसा आचार्यदेव योगीन्द्रदेव कहते हैं। समझ में आया?

'**अप्पास बोहण कयइ**' ऐसे आत्मा के स्वरूप को **समझाने के प्रयोजन से...**

उस आत्मा के लिये, ऐसा। इसमें है, गुजराती किया है न? '**अप्पासंबोहण कयइ**' अन्त में स्वयं अपने लिये भी कहते हैं, भाई! अन्त में ऐसा कहते हैं, पीछे है न! भाई! पीछे है यह मेरे लिये कहा है ऐसा लिखा है और यहाँ जरा ऐसा कहा है। ऐसे जो आत्माएँ हैं, चार गति से भय प्राप्त हैं और जिन्हें मोक्ष की अभिलाषा है। जिन्हें आनन्द प्राप्त है, दुनिया मेरे कुछ चाहिए नहीं। लाख चक्रवर्ती का राज, इन्द्र का हो तो उसके घर, वह विष्टा उसके घर रही; इस प्रकार जिसे अन्तर में आत्मा की छटपटाहट लगी है – ऐसे जीवों के लिये यह मेरा योगसार का उपदेश है। अन्यत्र क्षार के क्षेत्र में हम (बीज) बोते नहीं – ऐसा कहते हैं। जिसमें क्षार भरा हो, उस क्षेत्र में बोये तो बीज जल जाता है – ऐसा बीज हम व्यर्थ नहीं रखते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

आत्मा का स्वरूप समझने के प्रयोजन से... देखो, फिर विशिष्टता क्या? कि एक तो चार गति का त्रास जिसे वर्तता है और मोक्ष की अभिलाषा, उसे मुझे कहना है क्या? यह आत्मा का स्वरूप – एक बात, भाई! आहा...हा...! पुण्य करेगा तो ऐसा करेगा, व्यवहार करेगा यह बात ही यहाँ नहीं है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! आत्मा का सम्बोधन, आत्मा का स्वरूप समझाने के लिये, एक बात है। तेरा स्वरूप क्या है? तेरे अन्दर जात क्या है? भाई! तेरे स्वरूप में क्या पड़ा है? और यह विकार-फिकार वह तेरी जाति नहीं है – ऐसे आत्मा के स्वरूप को समझाने के लिये **एकाग्र मन से...** मैं भी अभी मेरे एकाग्र मन से दोहे की रचना करूँगा। लो, समझ में आया। कहते हैं, समझाना है उसे आत्मा का स्वरूप, हाँ! एक बात कही। आहा...हा...! आत्मा का सम्बोधन, भाई! तू यह है न! तेरा स्वरूप यह है न भाई! राग और विकार रहित तेरी वस्तु है न! वह मुझे समझाना है क्योंकि इस चार गति से डरा है, मोक्ष का अभिलाषी है, उसे इतना स्वरूप समझाते हैं। उसके लिये मैं भी एकाग्र मन से दोहे की रचना करूँगा। मेरा भी बराबर एकाग्र मन से जो भाव उसमें चाहिए, वह आयेगा, मैं उसकी रचना करूँगा। ऐसा कहकर यह तीन दोहे माङ्गलिकरूप से कहे हैं।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव)